

Regd. No. 21747

ISSN 2277-2014

Research Discourse

An International refereed research Journal

Vol. VI

No. III

July-September 2016



Editor

Dr. Anish Kumar Verma

Associate Editors

Dr. Santosh Kumar Tripathi

Dr. Purusottam Lal Vijay

विषय-सूची

1.	भारत में अस्पृश्यता डॉ० अलका शर्मा	1-5
2.	दलित समाज की अधोगति में धार्मिक अंधविश्वास की भूमिका डॉ० राजमुनि	6-9
3.	कार्योजित महिलाओं के स्वास्थ्य व्यवहार पर सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों का प्रभाव : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण बबिता कन्नौजिया	10-13
4.	21वीं शती का दर्पण और 20वीं शती का साहित्य समाज : नाटककार भीष्म साहनी रवि कुमार	14-16
5.	विकास, पुर्नवास एवं सामाजिक परिवर्तन (शिवपुरी जिले के न्यू अमोला गांव के विशेष संदर्भ में) देवेन्द्र कुमार कोली	17-19
6.	दिनकर की काव्य-भाषा डॉ० (श्रीमती) रेखा श्रीवास्तव	20-22
7.	बुनकर समाज का ताना-बाना : झीनी-झीनी बीनी चदरिया भरत सिंह	23-25
8.	गाँधी के सपनों के भारत में शिक्षा : एक नज़र डॉ० जे०पी० दूबे	26-27
9.	हिन्दी दलित साहित्य : एक दृष्टि डॉ० दिग्विजय नरायन	28-29
10. ✓	कबीर साहित्य में समाज सुधार की संकल्पना भारती कोरी एवं प्रो० चन्दा बेन	30-32
11.	शिक्षा में शारीरिक शिक्षा की अनिवार्यता सतीश चन्द्र श्रीवास्तव	33-34
12.	आधुनिक भारत को स्वामी विवेकानन्द का योगदान महेश प्रसाद राय	35-37
13.	पुराण एवं पुराणों का काल निरूपण डॉ० अर्चना त्रिपाठी	38-40
14.	सामाजिक न्याय के प्रणेता बाबू जगजीवन राम शिप्रा नन्दन	41-43
15.	हिन्दी नवगीत परम्परा में डॉ० श्रीपाल सिंह 'क्षेम' का गीत वैशिष्ट्य डॉ० नीतू सिंह	44-46

कबीर साहित्य में समाज सुधार की संकल्पना

भारती कोरी*
प्रो० चन्दा बेन*

भक्तिकाल के निर्गुण संत कवियों में कबीरदासजी का स्थान प्रमुख हैं। जिस समय कबीर का जन्म हुआ, उस समय भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक दशा शोचनीय थी। पूरा समाज आडम्बरप्रिय, अंधविश्वासी और स्वेच्छाचारी हो गया था। एक तरह मुसलमान शासकों की धर्माधता से जनता परेशान थी, और दूसरी तरफ हिंदू धर्म के कर्मकांड, विधान और पाखंड से धर्म का हास हो रहा था। हिन्दुओं पर बहुत अत्याचार हाते थे, उनमें केवल निराशा ही नजर आती थी। पंडितों के पाखंडपूर्ण वचन समाज में फैले हुये थे। ऐसे संघर्ष के समय में कबीर का प्रार्थुभाव हुआ। कबीर के समय पूरा समाज अस्त-व्यस्त था। उनका युग सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से संक्रांति काल था। हिंदू और मुसलमान दोनों धर्माधता में जकड़े एक-दूसरे के प्रति द्वेष की भावना से ग्रसित थे। कबीर ने सामाजिक क्षेत्र में व्याप्त कुरीतियों को भली-भाँति समझा, तथा उसे दूर कर एक नैतिक समाज के गठन का आह्वान किया। कबीर ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते थे जिसमें न जाति की बाध्यता हो और न ही धर्माधता की जकड़न हो।

उन्होंने वर्ण व्यवस्था को पूरी तरह नकारा है। कबीर ने समाज में चाहे हिंदू हो या मुसलमान किसी को भी नहीं छोड़ा, उन्होंने वेद, पुराणों के ज्ञान के बोझ से लदे ब्राह्मणों को कबीर ने चंदन का बोझ उठाये उस गदहे के समान कहा है जिसे इस बात का भी ज्ञान नहीं कि वह कितनी श्रेष्ठ एवं मूल्यवान वस्तु को अपनी पीठ पर लादे हुये हैं—

“पंडित कौन कुमति तुम लागे।

बूझूँ गे परवार सकल स्यो राम न जपहु अभागे।

वेद पुरान पढ़े का किया, गुन खर चंदन जस भारा

राम नाम की गति नहीं जानि कैसे उतर सिपारा।”¹

इस तरह कबीर ने समाज में व्याप्त कुरीतियों, कुविचारों और बाह्याडम्बरों का खुलकर विरोध किया। उन्होंने जप, माला, कीर्तिन, मूर्तिपूजा का कड़ा विरोध किया। यह समाज में फैली इन कुरीतियों को दूर करना चाहते थे, और ऐसे समाज का निर्माण चाहते हैं जिस समाज में कोई छोटा, बड़ा न रहे। “कबीर एक वर्गविहीन समाज बनाना चाहते हैं जिसमें ब्राह्मण और शूद्र, हिन्दू और मुसलमान में कोई जातिगत भेद एवं धर्मगत भेद न हो। कबीर का मानना है कि समाज में ऊँच-नीच का भेद मिथ्या है क्योंकि संपूर्ण जगत की उत्पत्ति पवन, जल मिट्टी आदि पंचभूतों से हुई है। इनका सृष्टा एक ही ब्रह्म हैं। सभी में एक ही ज्योति समान रूप से व्याप्त है लेकिन केवल भौतिक शरीर के द्वारा नाम रूप का ही भेद है—

ऊँच-नीच है मधिम बानी, एकै पवन एक है पानी।

एकै मटिया एक कुंभारा, एक समन्हि का सिरजहारा।”²

कबीर जाति-पाति ऊँच-नीच के प्रबल विरोधी थे। वह समाज के हर एक व्यक्ति को ऊँचा-उठाना चाहते थे। कबीर ने समाज में जो कुरीतियाँ फैली हैं उनको दूर करने का निरंतर प्रयास करते, और समाज को नैतिक एवं सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न किया। कबीर ने देखा कि पूरा का पूरा समाज छुआछूत की बुराई के गर्त में जा रहा है, क्योंकि कबीर के समय में समाज कर्मप्रधान था। उस समय पूरे समाज पर ब्राह्मणों का वर्चस्व था और वो अपने ज्ञान से सारे समाज को गुमराह करने में लगे हुये थे। कबीर ने समाज में बाह्याडम्बरों का विरोध करते हुए हिंदू एवं मुसलमान को फटकार लगाई। वह मुसलमानों के बाह्याडम्बरों का विरोध करते हुए कहते हैं।

*शोधछात्रा, हिन्दी विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

**अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, डॉ० हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश।

“काकर पाथर जोड़ के मस्जिद लई बनाय।

ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय।।”³

इसी तरह कबीर मूर्तिपूजा के भी विरोधी थे, क्योंकि वह तो निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना करने पर बल देते हैं और बाह्य दिखावे का वह विरोध करते हैं। वह कहते हैं कि जिस परमात्मा का न जन्म हुआ, रूप, रंग, आकार कुछ भी नहीं उसका भला आधार कैसा। इस तरह कबीर ने हिंदू धर्म में मूर्तिपूजा का जगह-जगह विरोध करते हुए अपनी अरुचि प्रदर्शित की। क्योंकि जो मनुष्य पत्थरों की पूजा करते हैं उन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं होता। उनके सारे कर्म बेकार हो जाते हैं, क्योंकि कोई पत्थर किसी को क्या दे सकता है। इसी संदर्भ में कहा गया है—

“जो पत्थर कौ कहिते देव, ताकी विरया होवै सेव

ना पाथर बोले न कुछ देइ, फोकट कर्म निहफल है सेइ

जो मिरतक को विस्ता मांहि सलाई, तौ निरतक का क्या घटि जाई।।”⁴

कबीरदास जी मनुष्य को ऊँचा बनाना चाहते थे, वे मानव के दुर्गुणों को नष्ट करना चाहते थे। क्योंकि यदि मानव के हृदय से अवगुणों का त्याग हो जाये तो मनुष्य का हृदय निर्मल हो जाता है। कबीर ने समाज के प्रत्येक व्यक्ति को उसके व्यक्तिगत विकारों को त्यागने का उपदेश दिया है। काम, क्रोध, मद और लोभ से दूर रहने की शिक्षा दी है। क्योंकि यदि ज्ञानी के हृदय में ये सभी दुर्गुण हैं तो वह मूर्ख के सदृश्य हैं। इस प्रकार कामुकता, क्रोध, अभिमान और लोभ ज्ञानी और अज्ञानी के बीच का भेद समाप्त कर देता है—

“काम, क्रोध, मद, लोभ की, जब लागि घट में खान

कहा मूरख कहा पंडिता, दोनों एक समान।।”⁵

इस तरह कबीर ने मूर्तिपूजा के साथ-साथ ही अवतारवाद का भी खंडन किया है। उन्होंने पूजा, व्रत, तीर्थ का खुलकर विरोध किया, कबीर ने इन सब चीजों को बच्चों के खेल के समान बताया।

“पूजा, सेव, नेम, व्रत, गुड़ियन का सा खेल।

जब लग पिनु परसै नहीं, तब लग संसय मेल।।”⁶

कबीर की वाणी आज के समाज और उसकी विषमताओं के परिप्रेक्ष्य में उतनी ही खरी तथा उपयोगी है, जितनी की तब थी। इस संदर्भ में हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है— “कबीरदास ने बाह्याचार धर्म की जो आलोचना की है, उसकी एक सुदीर्घ परम्परा थी। इस परम्परा से उन्होंने अपने विचार स्थिर किये हैं। इनके समय में एक और भी प्रधान धर्ममत भारतवर्ष में आ चुका था। उसमें भी बाह्याचार की प्रबलता थी। कबीरदास ने स्वयं इस धर्म द्वारा प्रभावित वंश में जन्म ग्रहण था इसीलिए उसकी आचार बहुलता से वे भी परिचित थे। मुल्ला और काजी को भी वे पंडित के समान अदना और हीनवीर्य समझते रहे। ऐसा नहीं जान पड़ता कि उन्होंने मुसलमान धर्म के बाह्याचारों के सिवा उसके किसी अंग की गहरी जानकारी प्राप्त करने की चेष्टा की हो। उन्होंने सुन्नत, बांग एवं कुरबानी आदि की खरी आलोचना की हैं, पर चाहे मुसलमान धर्म के बाह्याचार का खंडन हो या हिंदू मत के उन्होंने अपने लिए खंडन नहीं किया।”⁷ इस तरह समाज में फैले बाह्याचार का कबीर ने खुलकर विरोध किया और दोनों धर्मों की कुप्रथाओं की ओर ध्यान देकर हिंदू एवं मुसलमान जातियों को दोनों को समान रूप से उजागर किया।

कबीर ने समाज में हो रही हिंसा के प्रति विद्रोह किया है। वे हिंसा से दूर रहने का उपदेश देते हैं। कबीर को हिंसा से अति घृणा थी वे मांस खाने वाले मुसलमानों को फटकारते हुए कहते हैं—

“दिन में रोजा रखत हैं, रात हनत हैं गाय।

यह तो खून वह बंदगी, कैसे खुसी खुदाय।।”⁸

वास्तव में कबीर समाज को उचित मार्ग पर लाना चाहते थे जिसके लिए उन्होंने समाज में फैली सभी बुराईयों को नकारा है। वे चाहते थे कि जिस समाज में वह रहते हैं वह समाज सभ्य हो। कबीर ने समाज में फैली उस हर एक बुराई को नकारा है जो समाज को खोखला कर रही है। इन्हीं सब बुराईयों के रहते हुए कबीर ने पुस्तकीय एवं कोरे ज्ञान का भी परिहास किया। वे कहते हैं कि जो लोग दो-चार पोथियाँ पढ़कर स्वयं को ज्ञानी एवं समाज का पथ प्रदर्शक समझते हैं उनका ज्ञान पूर्णतः अतार्किक है। कबीर पण्डितों के पुस्तकीय ज्ञान पर कटाक्ष करते हुए कहते हैं—

“पोथी-पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय।

ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय।।”⁹

कबीर का मानना है कि वेद तथा पोथियाँ पढ़ने से कोई व्यक्ति ज्ञानी नहीं बन जाता, बल्कि पण्डित एवं ज्ञानी बनने के लिए प्रेम, दया और सदाचार का पाठ पढ़ना आवश्यक होता है। अतः कबीर ने वेद पुराणों को नदी में बहाने की बात करते हैं। क्योंकि वे पोथियाँ समाज कल्याण के स्थान पर सामाजिक विभाजन को बढ़ाने देने वाले साधन मात्र हैं। कबीर ने समाज में हो रहे शोषण आधारित पाखंड पर भी चोट की है। इस समाज में पाखंड और अंधविश्वास धर्म का पर्याय बन चुका था। कबीर ने झूठे कर्मकांडों की पोल खोलकर धर्म एवं समाज को धोखा देने वालों की नींदें हराम कर दी। “वे मानव मात्र के प्रेमी थे। एक तरह मनुष्य के हितों की बात सोचते-सोचते उनके मन की करुणा अत्यंत द्रवीभूत हो गयी थी और दूसरी तरफ सामाजिक भ्रष्टाचारों, एवं धार्मिक पाखण्डों को देखकर उनका मन तिलमिला उठा। उन्हीं भावों के प्रकाश में उनका काव्य लिखा गया, उनका समूचा काव्य सामाजिक चेतना को उभारने वाला है। वे निष्कर्मियों को कर्म करने की प्रेरणा देते हैं, और सोने वालों को जागृत करते हैं।”¹⁰

कबीर ने अपने समाज में शांति एवं भाईचारे की भावना जागृत करने के लिए उन्होंने राम-रहीम की एकता का संदेश दिया है। क्योंकि भारत में हिंदू और मुसलमान का झगड़ा राष्ट्र तथा समाज के पतन का कारण बन सकता था। अतः समाज में शांति एवं सौहार्द के लिए राम रहीम का एक होना आवश्यक है। कबीर के राम-रहीम की एकता के संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है—

“उपासना के बाह्यस्वरूप, आग्रह करने वाले और कर्मकांड को प्रधानता देने वाले पण्डितों और मुल्ला दोनों को उन्होंने खरी-खरी सुनाई, और राम-रहीम की एकता समझाकर हृदय को शुद्ध और प्रेममय करने का उपदेश दिया। देशाचार और उपासना विधि के कारण मनुष्य में जो भेदभाव उत्पन्न हो जाता है उसे दूर करने का प्रयास उसकी वाणी बराबर करती रही।”¹⁰ इस तरह समाज में फैला दुख, अज्ञान, भेदभाव और पाखण्ड उन्हें असहाय था। इसीलिए कबीर ने ब्राह्मण्डम्बरों को छोड़कर हिंदू और मुसलमान को राम का भजन करने की सलाह देते हैं—

“कहै कबीर एक राम भजहु रे, हिन्दू तुरक न कोई।

हमारै राम रहीम करीयाँ, केसौ, अलह राम सति सोई।।”¹¹

इस तरह कबीर ने समाज में फैली उन बुराईयों का विरोध किया जो समाज को निरंतर बद से बतौर बनाती जा रही थी। कबीर ने अपने काव्य एवं अपनी वाणी के द्वारा जनसामान्य तक यहीं संदेश देते रहे कि हमारा भारतीय समाज एक सभ्य समाज बन जाये।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप से यहीं कहा जा सकता है कि कबीर के समय, समाज में प्रचलित धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक भेदभाव को नकारते हुए सब में समानता की घोषणा कबीर ने इसी आधार पर की थी। कि एक ही ईश्वर ने सबको पैदा किया है। इस तरह कबीर ने सभी प्रकार के भेदभावों को कृत्रिम एवं मानवकृत बताकर सच्चे मार्ग का निर्देश दिया। उन्होंने मानव को विभाजित करने वाली सभी कुरीतियों का विरोध किया और समता एवं एकता का उपदेश दिया। कबीर मानव निर्माण के माध्यम से समतामूलक, शोषणरहित, हिंसारहित एवं समरस समाज का निर्माण करने का स्वप्न देखते थे एवं कबीर जिस धर्म, जाति, एवं वर्ग और समाजगत भेदों की संकीर्ण मानसिकता से ऊपर उठने का आजीवन आह्वान करते रहें।

संदर्भ :

1. कबीर ग्रंथावली — संपादक, श्यामसुंदरदास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पन्द्रहवां संस्करण, पृ. 231
2. कबीर विमर्श — डॉ. इशरत खान, विद्या प्रकाशन, सी-449, गुजैनी, कानपुर, 22 प्रथम संस्करण, पृ. 71
3. कबीर ग्रंथावली, सटीक — पुष्पपाल सिंह, अशोक प्रकाशन, 2015, नई सड़क दिल्ली, पृ. 66
4. कबीर ग्रंथावली — संपादक — रामकिशोर शर्मा, पृ. 223
5. संतवानी संग्रह — कबीर, वेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, पृ. 50
6. कबीर ग्रंथावली — संपादक, सुंदरदास, पृ. 71
7. कबीर — हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2004, पृ. 271
8. संतवानी संग्रह — कबीर, वेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, पृ. 59
9. कबीर का समाज दर्शन — डॉ. प्रहलाद मौर्य, आराधना प्रेस, कानपुर, पृ. 80
10. हिन्दी साहित्य का इतिहास — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ. 447
11. कबीर ग्रंथावली — रामकिशोर शर्मा, पृ. 61

